गुम होती बोलियां

● साधना सक्सेना

1961 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में बोली जाने वाली कुल भाषाएं 1652 थीं। लेकिन 1981 की जनगणना में कुल भाषाओं की संख्या 106 ही रह गई। ऐसा क्यों हुआ होगा? आखिर जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ भाषाएं बोलने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए न? क्या भाषाएं वाकई गुम होती हैं या फिर.

कुछ साल पहले की बात है। होशंगाबाद के पिपरिया शहर में 'हिन्दी दिवस' के उपलक्ष्य में मुझे एक वक्ता की हैसियत से आमंत्रित किया गया था। काफी दुविधा में थी कि क्या कहूं। हिन्दी भाषी होने के बावजूद भी मैं 'हिन्दी-भक्त' नहीं हूं और हिन्दी दिवस में वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया तो ज़ाहिर है कि अपेक्षित था कि मैं हिन्दी भाषा की महानता के विषय में ही कुछ कहूं। हिन्दी भी वह जो किताबों में लिखी

होती है, अखबारों में छपती है या फिर सरकारी आदेशों, निर्देशों में होती है, या फिर हमारी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में छपती है। यानी वह भाषा जिसका सहज बोलचाल, बातचीत, चर्चा की भाषा से अलग अपना परिष्कृत व औपचारिक स्वरूप है; जैसी हिन्दी शायद मैं यहां लिख रही हूं।

मेरी दुविधा कई स्तर की थी। हिन्दी ही क्यों? कौन-सी हिन्दी? हमें कैसे मालूम कि तेलगू या कश्मीरी या मराठी या उर्दू या एक कदम और आगे बढ़ें तो बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, गोंडी, संथाली, सादरी, कोरकू इत्यादि इतनी श्रेष्ठ भाषाएं नहीं हैं, और बिना औपचारिक रूप से कहीं लिखे ही अंग्रेज़ी को सर्वश्रेष्ठ भाषा का सामाजिक दर्जा कैसे मिल गया है? मैं सोच रही थी कि क्या अपने देश की भाषाई विविधता की बात करूं? क्या मैं तथाकथित 'हिन्दी क्षेत्र' की विभिन्न भाषाओं का ज़िक्र करूं और बताऊं कि इस क्षेत्र में ही बहुत सारे हिस्से ऐसे हैं जहां खड़ी हिन्दी न बोली जाती है न समझ में आती है? क्या मैं लोगों की मातृभाषा व अस्मिता के गहरे रिश्तों की बात करूं या 'हिन्दी क्षेत्र' के स्कूलों की भाषा और बच्चों की भाषा की दूरी की बात करूं?

बहरहाल, मैं अपने प्रश्नों के बारे में सोचते-सोचते एक के बाद एक कई वक्ताओं को सुनती रही। किसी ने कहा कि हिन्दी सर्वश्रेष्ठ भाषा है क्योंकि यह सबसे विकसित भाषा है तो किसी ने कहा कि यह साहित्यिक है, सबसे प्राचीन है, सबसे अधिक क्षेत्र में, सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। किसी ने तर्क दिया कि हिन्दी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है, यह सबसे समृद्ध है व इस भाषा में महान लेखक हुए हैं। एक अन्य वक्ता ने समझाया कि इसकी सबसे अधिक उपभाषाएं हैं, इत्यादि-इत्यादि।

यह सब तर्क इस उद्देश्य से भी दिए जा रहे थे कि हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए क्योंकि तार्किक रूप से यह मांग एकदम सही है। मैंने यह भी देखा कि दो-तीन तेलगु भाषी जो पिपरिया के स्टेट बैंक में काम करते थे, कार्यक्रम के बीच में ही उठकर चले गए। मैं सोचती रह गई कि इस तरह के कथनों को कोरी कूपमंडूकता मानूं, अनभिज्ञता मानूं या विषय तय होने के कारण कुछ बोलने की बाध्यता मानूं। मुझे यह भी ध्यान में आया कि हिन्दी भाषियों में वास्तव में यह पूर्वाग्रह है कि हिन्दी तो सब समझते ही हैं यानी कि यह इतनी आसान है कि सब समझ जाएंगे। और आमतौर पर देश की भाषाई विविधता की जानकारी लोगों में बहुत कम है। यह जानना कि लोगों के जीवन में उनकी अपनी भाषा का क्या महत्व होता है, इसको समझना हमें अपने से

फर्क भाषा बोलने वालों के प्रति ज़्यादा संवेदनशील व धैर्यवान बनाएगा। तब शायद उत्तर भारत के लोगों के लिए महाराष्ट्र मे दक्षिण के सभी राज्यों की भाषाएं 'मद्रासी' नहीं होंगी।

इसी उद्देश्य से मैंने 'हिन्दी दिवस' पर बहुभाषाई भारत की बात की जिसे अब इस लेख के माध्यम से सबके सामने रख रही हूं। मैं इस लेख के माध्यम से दो तरह के तथ्य रखने का प्रयास करूंगी जिनसे मुझे भारत जैसे देश की भाषाई विविधता को समझने में मदद मिली। एक प्रकार की जानकारी का संबंध हमारी संवैधानिक प्रक्रिया से है और दूसरी प्रकार की जानकारी भाषा-विज्ञान के दायरे में आती है।

संवैधानिक भाषाएं

हमारे देश के संविधान के आठवें शैड्यूल में अठारह भाषाओं को सूची-बद्ध किया गया है। इन भाषाओं को संवैधानिक भाषाओं का दर्जा मिला है। भारत की कोई भी राष्ट्रभाषा नहीं है जैसे रूस की 'रूसी' है या चीन की 'चीनी' है। सिद्धांततः भारत सरकार के साथ इन अठारह भाषाओं में से किसी भी भाषा में पत्र-व्यवहार किया जा सकता है (हालांकि यह सिर्फ

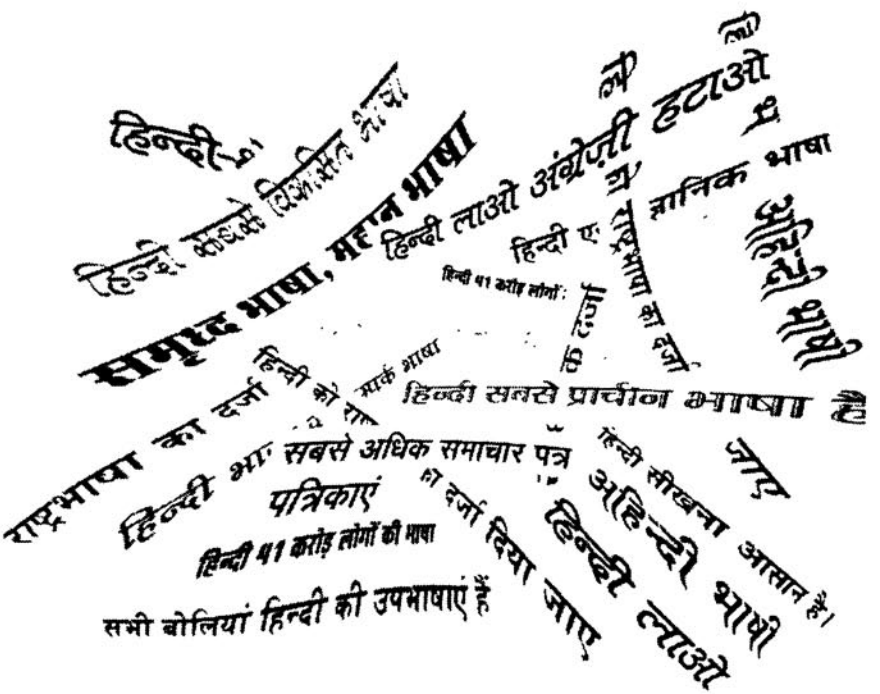

सिद्धांत की बात है। व्यवहार में पत्र-व्यवहार मात्र अंग्रेज़ी में या यदा-कदा हिन्दी में होता है)। सबसे पहले सन् 1950 में मात्र चौदह भाषाओं को संवैधानिक भाषा का दर्जा दिया गया था। ये भाषाएं थीं: आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, कन्नड़, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलगु, उर्दू और संस्कृत। 1967 में सिंधी व आठवें दशक में नेपाली, कोंकणी व मणीपुरी को भी शामिल कर लिया गया। इसलिए एक तरह से यह काफी अच्छी बात है कि हमारे जैसे बहुभाषाई देश की एक राष्ट्रभाषा नहीं है। परन्तु 1950 में हिन्दी को राष्ट्रीय शासकीय (ऑफिशियल) भाषा का दर्जा दे दिया गया था। देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा को भारत सरकार की भाषा और केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों के बीच संपर्क की भाषा का दर्जा दिया गया था और साथ ही यह प्रावधान था कि सभी राज्य हिन्दी समेत आठवें शैड्यूल में सूचीबद्ध किसी भी भाषा का इस्तेमाल प्रशासनिक कार्यों के लिए कर सकते हैं। हालांकि अंग्रेज़ी आठवें शैड्यूल में सूचीबद्ध भाषाओं में शामिल नहीं है फिर भी 1950 में यह प्रावधान किया गया था कि सरकारी कार्यों में पन्द्रह वर्षों तक यानी 1965 तक अंग्रेज़ी भी, हिन्दी के साथ एक सहभाषा की हैसियत से इस्तेमाल की जा सकती है। अब यह समय सीमा अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दी गई है। इस प्रकार अंग्रेज़ी का दर्जा आज भी बरकरार है।

जनगणना और गुम होती भाषाएं

अब थोड़ी नज़र इस बात पर डालें कि आखिर हमारे देश में भाषाएं हैं कितनी? 1961 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, जिसमें लगभग हर मातृभाषा को रिकॉर्ड करने का प्रयास किया गया था, हमारे देश में बोली जाने वाली 1652 भाषाएं थीं। इसमें से करीब दो सौ भाषाएं ऐसी थीं जिनको व्यवहार में लाने वालों यानी बोलने वालों की संख्या दस हज़ार या उससे अधिक थी।

1971 की जनगणना के अनुसार कुल भाषाओं की संख्या सिर्फ 221 ही रह गई व 1981 में मात्र 106, ऐसा क्यों हुआ होगा? आखिर जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न भाषाएं बोलने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए; बीस साल की इस अल्प अवधि में इतनी बड़ी संख्या में न तो भाषाएं लोप होती हैं न लोग अपनी मातृभाषा छोड़ देते हैं। सुमि कृष्णा, जिनकी पुस्तक 'इन्डियाज़ लिविंग लैंग्वेजेस' से मैंने कई जानकारियां ली हैं, ने कारण ढूंढने का प्रयास किया कि आखिर ऐसा क्यों हुआ होगा। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि 1981 की जनगणना

मुख्य भाषा के आधार पर हुई थी और कई मातृभाषाओं को समूह बनाकर उन सबको एक मुख्य भाषा के अंतर्गत ही गिना गया।

श्री कृष्णमूर्ति ने 'लैंग्वेज एण्ड द स्टेट' पुस्तक में छपे अपने लेख में लिखा है कि 1971 की जनगणना के समय ही जनगणना आयुक्त को यह सलाह दी गयी थी कि वह ऐसी सभी भाषाओं को सूचीबद्ध न करवाएं जिनको बोलने वालों की संख्या दस हज़ार से कम है। जनगणना के दौरान आंकड़े कैसे इकट्ठे किए जाते हैं यह भी एक महत्वपूर्ण बात है परन्तु बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। ऐसी मातृभाषाओं को सूचीबद्ध न किया जाना तो एक पहलू है ही, पर इन मातृभाषाओं या बोलियों को किसी प्रमुख भाषा का अपभ्रंश माना जाना कितना सही है यानी इस नीति के चलते भोजपुरी या मघई या छत्तीसगढ़ी, यहां तक की पंजाबी बोलने वालों को भी हिन्दी-भाषी ही कहा जाएगा चाहे उन्हें हिन्दी समझ में आती हो या नहीं।

इस प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार देश में हिन्दी बोलने व समझने वालों की संख्या छब्बीस करोड़ हो गई थी। यानी हिन्दी बोलने वालों की संख्या कुल जनसंख्या का चालीस प्रतिशत आंकी गई। ऐसा किस समझ के तहत हुआ होगा? एक कारण तो यही था कि 1981 की जनगणना में चालीस भाषाओं को हिन्दी भाषा की उपभाषाएं माना गया। यह वह पूरा क्षेत्र है जो 'हिन्दी भाषी क्षेत्र' कहलाता है। बल्कि सुमि कृष्णा के अनुसार आंकड़ों को ध्यान से देखने पर लगता है कि जैसे भारत की नब्बे करोड़ की जनसंख्या संवैधानिक अठारह भाषाओं में से कोई-न-कोई भाषा बोलती या इस्तेमाल करती ही है।

जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अंतर्गत चालीस अन्य भाषाओं को इकट्ठा किया गया, उसी प्रकार का एक और उदाहरण देखें। 1961 में उड़िया बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ आंकी गई थी। 1981 तक आते-आते यह संख्या तीन करोड़ हो गई, परन्तु उड़ीसा में ही आदिवासी भाषाएं – खरिया व भूमजी बोलने वालों की संख्या इन्हीं दो दशकों में क्रमशः एक लाख चालीस हज़ार से घटकर इक्यानवे हज़ार व उनचास हज़ार से घटकर अट्ठाईस हज़ार रह गई। खरिया व भूमजी बोलने वाले लोगों को, जो उड़िया से एकदम फर्क भाषाएं हैं, उड़िया भाषा के तहत मानना क्या सही है?

इसलिए 1971 व 1981 के जनगणना के आंकड़ों से हमारे देश की भाषाई विविधता का सही चित्र

होगा कि बाकी भाषाएं पिछड़ी हुई हैं, कम विकसित हैं, कम समृद्ध हैं, इसलिए पीछे छूट गई हैं?

इस मुद्दे पर भाषाविदों का कहना है कि भाषाएं इस्तेमाल होने से ही समृद्ध होती हैं। वे लोगों के जीवन और संस्कृति का हिस्सा होती हैं। भाषाओं की समृद्धि मात्र उनके लिखे या न लिखे होने पर निर्भर नहीं होती। भाषाविदों का यह भी मत है कि हर भाषा का एक ढांचा होता है, शब्दावली होती है, वाक्य संरचना के नियम होते हैं चाहे उसका लिखित स्वरूप प्रचलित हो या न हो। यानी भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बोलियां भी पूर्ण विकसित भाषाएं हैं ।

इसलिए ये मान्यता गलत है कि भाषा की तुलना में बोलियां पिछड़ी हैं या कम समृद्ध हैं। गैरबराबरी सामाजिक व राजनैतिक प्रक्रिया का परिणाम है जिससे कुछ भाषाएं 'गंवारू व अशिष्ट' कहलायी जाने लगती हैं लेकिन कुछ गिनी-चुनी भाषाएं, जिनको संवैधानिक या साहित्यिक या शैक्षिक या व्यवसायिक संस्थाओं से मान्यता मिल जाती है, उनकी सामग्री छपने लगती है, वे आगे बढ़ जाती हैं – चाहे वे कम लोगों के द्वारा ही इस्तेमाल हो रही हों।

लोगों की अपनी मातृभाषा से गहरे भावनात्मक लगाव के साथ-साथ अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान व आत्मविश्वास जुड़ा होता है। इसकी गहरी सांस्कृतिक जड़ें होती हैं जिन्हें आंकड़ों से छुपाकर मिटाया नहीं जा सकता। इसलिए किसी एक भाषा की महानता या प्राचीनता या अन्य कई मापदण्डों का ज़िक्र करते हुए यदि हम यह भी ध्यान रख पाएं कि हमारे देश में बहुत-सी और भाषाएं भी इसी स्तर की हैं तो हम भाषाई विवादों को ज़्यादा रचनात्मक मोड़ दे सकेंगे।

साधना सक्सेना – शिक्षा से गहरा लगाव, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में कार्यरत।

इस लेख की अधिकतर तथ्यात्मक जानकारियां निम्न दो पुस्तकों से ली गई हैं:

1. ***'इण्डियाज़ लिविंग लैंग्वेजेस'**, सुमि कृष्णा, अलाईड पब्लिशर्स, १९९।*
2. ***'लैंग्वेज एण्ड द स्टेट – पर्सपेक्टिव्स ऑन द एट्थ शैड्यूल'** प्रो. आर.एस. गुप्ता, प्रो. अन्विता अब्बी व डॉ. कैलाश अग्रवाल द्वारा संपादित, क्रिएटिव बुक्स, १९९५*